International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
May-June- 2022, Volume-9, Issue-3 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

जहाँगीर के शासनकाल में धार्मिक नीति का स्वरूप

Nikita Rani,
M.A. History, (UGC-NET),

Assistant Professor, B.R.College Higher Education of Technology, Deoband,

Maa Shakumbhari University, Saharanpur.

Mail ID:nikitapundir0861@gmail.com

1.1 प्रस्तावना

मुगलकालीन समाज की संरचना सल्तनतकाल से बहुत भिन्न नहीं थी, सिवाय इसके कि इस काल में जैनों की स्थिति में कुछ परिवर्तन आये थे, सिक्ख एक नये और महत्वपूर्ण सम्प्रदाय के रूप में उभरे थे और ईसाईयों की संख्या भी बढ़ी थी। उन्हें मुगल दरबार में ज्यादा प्रभाव भी प्राप्त हुआ था। हिन्दू समाज में पूर्ववत् जाति पर आधारित विभाजन बने रहे। भक्ति आन्दोलन के प्रभाव में जाति–प्रथा का खण्डन करने वाले सन्तों का पदार्पण भी हुआ। उनके द्वारा नए सम्प्रदायों की स्थापना भी हुई जिनके सदस्य जाति–प्रथा के सिद्धान्तों को नहीं मानते थे परन्तु इन सबका प्रभाव अत्यन्त सीमित रहा और जाति–प्रथा की जटिलता में कोई उल्लेखनीय कमी नहीं आई। मुस्लिम समाज का स्वरूप भी पूर्ववत् रहा। केवल विदेशी मुसलमानों में ईरानियों की संख्या और प्रभाव में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। यह प्रक्रिया अकबर के समय में आरम्भ हुई। हब्शियों और अरबों का महत्व पूर्व काल की तुलना में बहुत कम हो गया। 18वीं शताब्दी तक मुगल सामन्तों में दो वर्ग ही मुख्य रूप से महत्वपूर्ण रह गए थे। ये थे भारतीय मुसलमान और तूरानी। इस काल की दरबारी गुटबंदियों और षडयंत्रों में इन दोनों की भूमिका विशेष महत्व रखती है।[1]

समाज में महिलाओं की स्थिति पहले की तुलना में सुधरी थी। मुगल काल में अनेक विदुषी और प्रभावशाली महिलाओं की चर्चा मिलती है, जो हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही वर्गों से सम्बन्धित थीं। जैसे जहाँआरा, नूरजहाँ, गुलबदन बेगम, चाँदबीबी, दुर्गावती और ताराबाई परन्तु सामान्यतः महिलाओं को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता था, जैसे पर्दा प्रथा, बहु–विवाह, बाल–विवाह, सती प्रथा, बाल–हत्या आदि। अकबर द्वारा सामाजिक सुधारों के प्रयास किये गए। उसने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। बहुविवाह एवं सती का प्रचलन रोका और विवाह के लिए निम्नतम आयु निर्धारित करने के आदेश दिये। परन्तु ये प्रयास बहुत सफल सिद्ध नहीं हुए।[2]

दूसरी ओर दासों की स्थिति में सल्तनकाल की तुलना में गिरावट आयी। दासों को अब मात्र सेवक के रूप में अथवा घरेलू काम–काज के सहायक के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। उन्हें प्रशासनिक अथवा सैनिक पदों पर नियुक्ति वस्तुतः बन्द हो गयी। स्वाभाविक रूप से समाज में उनकी स्थिति में गिरावट आयी।

मुगलकाल में शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया कि मदरसों के पाठ्यक्रम में धर्मातिरिक्त विषयों, जैसे गणित, दर्शन, साहित्य आदि का महत्व बढ़ा। इसी के साथ गैर मुस्लिमों द्वारा फारसी शिक्षा के प्रति अधिक अभिरूचि दिखायी गयी। इसके दो कारण थे। एक तो हिन्दुओं को

[1] चोपड़ा, पी0एन. आपसिट, पेज–6

[2] अशरफ, आपसिट, पेज–205

प्रशासनिक पदों पर काफी संख्या में नियुक्तियाँ मिलने लगी थीं और इनके लिए फारसी शिक्षा इन नौकरियों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य थी क्योंकि फारसी ही प्रशासनिक कार्यों की भाषा थी। दूसरे पाठ्यक्रम में धर्मातिरिक्त विषयों का महत्व बढ़ने के कारण गैर–मुस्लिमों के लिए भी अब यह शिक्षा पद्धति अधिक उपयोगी बन गयी थी। यह परिवर्तन लोदी काल से ही आरम्भ हो गये थे, मगर इनका परिपक्व रूप मुगलकाल में ही प्रस्तुत हुआ। इसी के साथ–साथ हिन्दू और मुस्लिम समाज में शिक्षा का परम्परागत रूप भी पूर्ववत बना रहा।[3]

हिन्दू और मुस्लिम समाज के बीच सम्पर्क से एक मिली–जुली परम्परा का आरम्भ हुआ। रहन–सहन के ढंग, खान–पान, वेश–वूषा, त्यौहार एवं उत्सव आदि में एक मिली–जुली परम्परा विकसित हुई। मुगलकाल में इस समन्वयवादी का दरबारी जीवन से भी घनिष्ठ सम्पर्क रहा। अकबर द्वारा राजपूत शासकों के प्रति मैत्रीपूर्ण नीति अपनाने और वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना से शासक वर्ग के जीवन में भी समन्वय आया और मुगल दरबार के रीति–रिवाज पर राजपूत परम्परा का प्रभाव पड़ा। बाद में मुगल परम्पराओं ने राजपूतों के दरबारी जीवन को भी प्रभावित किया।

जहाँगीर ने अकबर से उत्तराधिकार में धार्मिक उदारता की नीति प्राप्त की और उसने नीति का अनुसरण करते रहने का भरसक प्रयत्न किया। अकबर ने जजिया और तीर्थयात्रा करमाफ कर दिए थे, इस्लाम से धर्मपरिवर्तन की छूट दे दी थी, धार्मिक मतवाद सम्बन्धी उत्पीड़न को समाप्त कर दिया था और गैर–इस्लामी धार्मिक उत्सवों और पर्वों को सार्वजनिक रूप से मनाने की अनुमति दे दी थी। उसके जमाने में हिन्दू और ईसाईयों ने बिना किसी प्रकार की रूकावट के अनेक सार्वजनिक पूजा–स्थलों का निर्माण करवाया। उच्च सरकारी सेवाओं में नियुक्तियाँ बिना किसी धार्मिक भेदभाव के हाने लगीं। उसके दरबा में हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाईयों को भी जगह मिली और वे अपनी–अपनी योग्यतानुसार राज्य की सवा में नियुक्त हुए। उसने किसी संकीर्ण धार्मिक–दार्शनिक मतवाद की परवाह किए बगैर साहित्य, कला और विज्ञान का संरक्षण प्रदान किया। अनेक हिन्दू और प्राचीन फ़ारसी रीति–रिवाजों को अपनाने सेउसके दरबारी समारोहों की शोभा में वृद्धि हुई। हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों में आपसी मेलजोल बढ़ाने के लिए उसने अनक हिन्दू धार्मिक ग्रंथों का फ़ारसी में अनुवाद करवाया। इन्हें देखकर जहाँगीर की भी यह दृढ़ धारणा बन गई कि इस्लाम की सूफी और हिन्दू दर्शन की वेदांतिक धारा में बहुत अधिक अन्तर नहीं है।[4]

राज्य को 'धर्मनिरपेक्ष' स्वरूप प्रदान करने का जो प्रयत्न अकबर ने किया, उसके बारे में हुई मुस्लिम धर्माचार्यों की प्रतिकूल प्रतिक्रिया ने ही कुछ हद तक जहाँगीर को 'सहिष्णुता के मार्ग' पर आगे बढ़ने की स्थिति पर पुनर्विचार करने और 'इस्लाम की सफलता मं ही अधिक रूचि लेने' को बाध्य कर दिया। हाँ, इसके बावजूद उसने उत्पीड़न के कार्य को सक्रिय बढ़ावा नहीं दिया और न ही उसके पिता अकबर के समय में हिन्दुओं को जो नया रुतबा मिल गया था, उसे बिगाड़ा। उपर्युक्त बातों के बारे में विद्वानों के विचार अलग–अलग हैं। अकबर की नीति से जहाँगीर के तथाकथित पलायन की बात का सम्बन्ध बेनी प्रसाद ने उसके राज्यारोहण के संकट से जोड़ा है। वे कहते हैं कि यह संकट इसलिए भी बढ़ गया था क्योंकि उसने अपने पिता की सहिष्णुता की नीति को उलटने या उसमें परिवर्तन करने तथा दीने–इलाही को त्याग देने के मुस्लिम अमीरों के प्रयत्नों को बढ़ावा दिया था। इरफ़ान हबीब ने तो सन् 1960 में ही इस मत का खंडन कर दिया था। अतहर अली ने भी हाल ही में 1990 मं यह मत व्यक्त किया है कि जहाँगीर के धार्मिक विचार

[3] बनारसी प्रसाद सक्सेना, शाहजहां ऑफ देहलीख पृ0 27
[4] H. H. Dodwell (ed.), "Cambridge History of India", Vol. V. Delhi, 1963

अकबर के विचारों से प्रायः मिलते–जुलते ही हैं। अतहर अली के अनुसार जहाँगीर ने इस तरह का कोई वचन नहीं दिया था कि वह अपने राज्यारोहण के बाद अकबर की धार्मिक नीति में परिवर्तनकर देगा। वह तो अकबर की धार्मिक मान्यताओं को ही सार्वजनिक रूप से समर्थन देता रहा। हिन्दुओं और हिन्दू धर्म के प्रति उसकी कथनी और करनी वैसी ही बनी रही जैसी उसके पिता की थी।

ईसाईयों को धर्मांतरण करवाने की जो छूट मिली हुई थी, उसे भी उसने वापस नहीं लिया। सभी गैर–कैथोलिक लेखक इस बारे में एकमत हैं कि जिन लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया, उनमें से अधिकांश आर्थिक कारणों से उसके प्रति आकर्षित हुए और जब उन्होंने यह महसूस किया कि उन्हें इससे लाभ मिलना बंद हो गया है तो उन्होंने उस धर्म को पुनः त्याग दिया। विलियम फिंच के अनुसार धर्मांतरण का सबसे अधिक सनसनीखेज उदाहरण तो दानियाल के बेटों और जहाँगीर के पोते का सार्वजनिक बपतिस्मा था जो कि सन् 1610 में सम्पन्न हुआ था। इस धर्मांतरण का उद्देश्य कुछ भी रहा हो, किन्तु इससे यह तो साबित हो ही गया कि यह एक सनकपन का मामला था क्योंकि सन् 1611 में उन राजकुमारों ने ईसाई धर्म का त्याग कर पुनः इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। जहाँगीर ने न केवल ईसाइयत के प्रति सहिष्णुता बरती वरन् उसने उसके रख–रखाव में भी मदद की। ईसाई पादरियों को प्रतिदिन के हिसाब से तीन रूपये से लेकर सात रूपये तक मिलते थे और धार्मिक अवसरों पर वह उन्हें अधिक धन भी देता रहता था।[5]

जहाँगीर और सिक्खों के सम्बन्ध को लेक अनेक प्रकार की विवादास्पद और कटु बातें कहीं गई हैं। सिक्खों के तत्कालीन धर्मगुरू अर्जुनदेव से जहाँगीर नाराज हो गया। नाराजगी का कारण गुरू द्वारा चलाया जा रहा धर्मांतरण–शुद्धि का आन्दोलन था। ऐसा माना जाता है कि कुछ मुसलमानों ने इस्लाम धर्म को छोड़कर उसे अपना धर्मगुरू स्वीकार कर लिया जहाँगीर का कहना है कि ऐसी स्थिति में उसके सामने दो ही रास्ते थे–या तो वह बलपूर्वक गुरू को मुसलमान बना लेता, या फिर गुरू की ''धार्मिक दुकानदारी'' को बंद करवा देता। वह इन दोनों विकल्पों पर विचारकरही रहा था कि भाग्य से उसे एक बहाना हाथलग गया जिसने उसकी गुत्थी सुलझा दी। जब खुसरो ने बगावत कर दी तो वह गुरू से मिला। गुरू ने शायद बिना आगा–पीछा सोचे ही उसे इस काम में आर्शीवाद–सहायोग प्रदान किया। राजद्रोह के काम में समर्थन देने के लिए गुरू अर्जुनदेव को मौत की सजा सुनाई गई। गुरू को जेल से छुड़वाने का हर प्रयत्न विफल हुआ और उनकी कारागार में ही मृत्यु हो गई। इस बारे में श्रीराम शर्मा का मत है कि गुरू को सजा देने के पीछे जहाँगीर का कोई धार्मिक उद्देश्य नहीं था। दबिस्ताने–मज़ाहिब के अनुसार कारागार की सजा का कारण गुरू अर्जुनदेव पर लगाए गए आर्थिक जुर्माने की उनके बेटे हरगोविन्द द्वारा भरपाई नकरना था। शर्मा के अनुसार सजा की वजह मिली–जुली थी।

ऐसी भी मान्यता है कि चूँकि जहाँगीर ''सच्चे धर्म'' के संरक्षक की भूमिका अदा करना चाहता था, इसलिए राजदरबार में जिन धार्मिक मतवादों का पक्षपोषण संभव नहीं था, उनके अनुयायियों को उत्पीड़न करने के लिए इस भूमिका ने भी उसे प्रोत्साहित किया। तदनुसार लाहौर परगने के एक धार्मिक नेता शेख़ इब्राहिम और एक शिया लेखक काजी नूरुल्लह दंडित हुए। इस प्रकार के उत्पीड़न का सबसे ज्वलंत उदाहरण शेख़ अहमद सरहिंदी का है जो अपने धार्मिक विचारों के कारण दंडित हुआ। शर्मा की मान्यता है कि इस

[5] Iqtidar Alam Khan, "Mughal Court Politics during Bairam Khan's Regency", Medieval India : A Miscellany, Vol. I, 1969

प्रकार के उत्पीड़नों के पीछे धर्म–दर्शन विषयक विद्वेष की भावना प्रेरक शक्ति का काम कर रही थी। वह इसे धार्मिक उत्पीड़न नहीं मानते।[6]

गुरैरो हमें बताता है कि अपनी गद्दीनशीनी के बाद जहाँगीर ने मुस्लिम मेले और त्यौहार मनाए। सातवें साल यानी 1612 में उसने पहली बार रक्षाबंधन का त्यौहार मनाया और अपनी कलाई पर राखी बधँवाई। ग्यारहवें वर्ष अर्थात् 1616 में शिवरात्रि के दिन उसने योगियों से भेंट की। पादशाह दशहरा भी मनाता था और उस दिन वह फौज और हाथियों का निरीक्षण करता था। दीपावली के दिन उसने सामने जुआ खेलने की इजाजत दे रखी थी। ईसाईयों को सार्वजनिक रूप से ईस्टर, क्रिसमस (बड़ा दिन) और अन्य त्यौहार मनाने की छूट थी। केवल जहाँगीर ही हिन्दू त्यौहारों में भाग नहीं लेता था, अनेक मुस्लिम औरतं और मर्द भी इनमें बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते थे।

एक हद तक जहाँगीर ने अपने पिता की ही तरह अपने राजसी कक्ष में विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों के साथ धार्मिक विषयों पर विचार–विमर्श करने की परम्परा बनाए रखी। चर्चित विषयों में हिन्दू अवतारवाद जैसे विषय या ईसाइयत से सम्बन्धित कई विषय सम्मिलित थे। वह योगियों से भी मेल–मिलाप रखता था।[7]

अकबर ने कई उच्च सार्वजनिक पदों पर हिन्दुओं को नियुक्त किया था। जहाँगीर ने भी इस परम्परा का पालन किया।

जहाँगीर ने कुछ सामाजिक बुराईयों पर भी हमला बोला। भाँग और शराब जैसे मादक पदार्थों की खुली बिक्री पर रोक लगाई गई। अकबर के जमाने में दवा–दारू के रूप में शराब की खुली बिक्री हो सकती थी। जहाँगीर ने मुस्लिम कानून क तहत उसे बंद करवा दिया। चूँकि जहाँगीर स्वयं जबरदस्त शराबखोर था, इसलिए इस बात में संदेह की गुंजाइश है कि क्या इस समस्या के समाधान मं वह अपने पिता स अधिक कामयाब रहा? अपने पिता की परम्परा के विपरीत उसने सार्वजनिक रूप से जुआ खेलने की प्रथा को भी पूरी तरह से दबा दिया। बंगाल में बच्चों को खस्सी करने की प्रथा थी, उस पर भी उसने रोक लगवा दी। अपने पिता की तरह उसने हिन्दुओं में प्रचलित सती प्रथा को बिना पुर्वानुमति के नहीं चलने दिया। आगरा के सती से सम्बन्धित सभी मामले उसी ने निपटाए। दाबिस्ताने–मज़ाहिब का लेखक बताता है कि जहाँगीर नेकिसी श्रीकांत को हिन्दुओं का जज नियुक्त किया ताकि वे सहूलियत महसूस करें और उन्हें किसी मुसलमान की कृपा–दृष्टि का मोहताज न होना पड़े। यह निर्णय अकबर के कानून (नमूसे–अकबरी) के अनुसार ही था जिसमें सभी लोगों को, चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले हों, समान रूप से शाही कृपा पाने और अपनी–अपनीपूजा पद्धतियों तथा आचरण के अनुसार संरक्षण पाने का अधिकार मिला हुआ था।

अकबर दोनों सम्प्रदायों के विद्वानों को निकट लाने के लिए शाही सरंक्षण में हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थों का अनुवाद करवाता था। जहाँगीर नेभी इसी परम्परा को बनाए रखा। उसके जमाने के कुछ विद्वानों ने दोनों सम्प्रदायों के बीच कड़ी का काम किया। अब्दुर्रहीम खान–खाना ने हीम उपनाम से हिन्दी में काव्य–रचना की जिसमें हिन्दू देवताओं की स्तुति में रचे गए पद भी हैं। कहा जाता है कि जहाँगीर सूरदास का आश्रयदाता भी था जिसके सरंक्षण में सूरसागर की रचना हुई।

[6] Irfan Habib, "The Agrarian System of Mughal India", 1556-1707, Bombay, 1963
[7] Irfan Habib, "Potentialities of Capitalitstic Development in the Conomy of Mughal India", Enquiry, New Series, Vol. III, No. 3, Winter, 1971

1.2 निष्कर्ष

अकबर की ही तरह जहाँगीर के जमाने में भी सप्ताह में दो दिन (रविवार और गुरुवार) को पशु–हत्या पर पांबदी थी। यह पाबंदी हिन्दुओं की भावनाओं के आदर–स्वरूप नहीं थीं; ये दोनों दिन इसलिए पावन मानेजाते थे क्योंकि सरकारी मुस्लिम गणना के अनुसार गुरूवार के दिन जहाँगीर की गद्दीनशीनी हुई थी और रविवार का दिन अकबर का जन्मदिन था। अगर कभी गुरूवादी ईद होती तो पशु–वध अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया जाता था। सम्भवतः पंजाब में गोहत्या पर पाबंदी थी। अकबर ने इसे लागू किया था, पर शाहजहाँ ने इसे निरस्त कर दिया।

यहबात विश्वसनीय नहीं लगती कि जहाँगीर की नीतियाँ इस्लामी विचारों से प्रभावित थीं। इसकी पुष्टि जहाँगीर के औपचारिक विरुद (उपाधि) को देखने से हो जाती है, जिस पर इस्लामी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। उसने अपने और पिता के विरुद्वाचक नामों में से मुहम्मद शब्द हटा दिया और खुद को नूरुद्दीन जहाँगीर कहना शुरू करदिया। तुजुक–ए–जहाँगीरी में नूरुद्दीन विरुद के बारे में जो दो कारण बताए गए हैं, उन दोनों का इस्लाम से कोई लेना–देना नहीं हैं। नूरुद्दीन कहने से सूर्य के प्रति उसके आदर भाव की पुटि होती है। यही तथ्य अकबर की धार्मिक मान्यताओं में एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण था। दूसरा कारण उसकी यह उत्कंठा प्रदर्शित करता है कि वह अपने पिता की उपाधि से मिलते–जुलते अर्थ वाली उपाधि ही ग्रहण करे जिसमें 'नूर' (प्रकाश) और 'जलाल' (भव्यता) दोनों थे। इसकी प्रेरणा का श्रेय वह मुस्लिम धर्माचार्यों को न देकर 'भारतीय ऋषियों' को देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आइने अकबरी, भाग–3, कलकत्ता, 1872–73, पृ0 312
- इरफान हबीब, दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ दी मुगल्स, बम्बई, 1963, पेज–94
- उद्वत हरिशचन्द्र वर्मा, संपादक, मध्य कालीन खण्ड–2 (1540–1761), प्रथम संस्करण, 1963 हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विष्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पेज–443
- कैम्ब्रिज इकनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड–1, पृ0461
- इरफान हबीब, दी एग्रेरियन, आपसिट, पेज–343
- मोरलैण्ड, दि एग्ररियन, आपसिकट, पेज–96
- चोपड़ा, पी0एन., आपसिट, पेज–18
- फ्रेंकोस, पेल्सर्ट, जहांगीर्स इण्डिया, अनुवाद डब्लू0एच0 मोरलैण्ड तथा पी0गल0, दिल्ली, 1925
- कैम्ब्रिज इकनामिक हिस्ट्री ऑ इण्डिया, पु0 462
- रिजवी, मुगलकालीन भारत, भाग–1, पृ0 191–94
- सतीशचन्द्र, मेडिवल इण्डिया, पृ 29–46
- इरफान हबीब, द एग्रेरियन, आपसिट, पृ0 101
- ताराचन्द, इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, इलाहाबार, 1963
- अवध बिहारी पाण्डेय, पूर्व मध्यकालीन भारत पृ0 240: लेटर मेडिवल इण्डिया, पृ0 12–13